National Journal of Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2025; 1(61): 285-288
© 2025 NJHSR
www.sanskritarticle.com

राजेन्द्र कुमार,
संस्कृत शिक्षक,
राजकीय माध्यमिक पाठशाला-
बशील, सोलन, हिमाचल प्रदेश

Correspondence:
राजेन्द्र कुमार,
संस्कृत शिक्षक,
राजकीय माध्यमिक पाठशाला-
बशील, सोलन, हिमाचल प्रदेश

वेदान्तदर्शने जीव-ब्रह्मैक्यस्य विवेचनम्

राजेन्द्र कुमार

वेदान्त दर्शन में ब्रह्म, जीव तथा जगत् के पारमार्थिक स्वरूप का गहन विवेचन प्राप्त होता है, जिसमें “जीव-ब्रह्म ऐक्य” का सिद्धान्त केन्द्रीय स्थान रखता है। जीव और ब्रह्म के मध्य प्रतीत होने वाला भेद वास्तविक न होकर अविद्या जनित माना गया है, जो आत्मज्ञान के अभाव के कारण उत्पन्न होता है। उपनिषदों के महावाक्य—“तत्त्वमसि”, “अहं ब्रह्मास्मि”, “प्रज्ञानं ब्रह्म” आदि—इस ऐक्य को प्रतिपादित करते हुए यह स्थापित करते हैं कि आत्मा का वास्तविक स्वरूप ब्रह्म ही है। उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र तथा भगवद्गीता में प्रतिपादित तत्त्वज्ञान के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि ब्रह्म ही एकमात्र परम सत्य है और जीव उसी का प्रतिबिम्ब अथवा आवच्छिन्न रूप है। आदि शंकराचार्य के अद्वैत वेदान्त में यह सिद्धान्त सर्वाधिक स्पष्टता के साथ प्रतिपादित होता है, जहाँ अविद्या को भेद का कारण तथा ब्रह्मज्ञान को मोक्ष का साधन माना गया है। पञ्चकोश, अवस्था-त्रय तथा अध्यारोप-अपवाद जैसी पद्धतियाँ इस तथ्य को उद्घाटित करती हैं कि जीव की सीमितता केवल उपाधि मात्र है, न कि उसका वास्तविक स्वरूप। ज्ञान की प्राप्ति होने पर यह उपाधि-जनित भेद समाप्त हो जाता है और अद्वैत की अनुभूति होती है, जिसे मोक्ष कहा गया है। इस प्रकार जीव-ब्रह्म ऐक्य का सिद्धान्त न केवल दार्शनिक चिन्तन का विषय है, बल्कि आत्मबोध और आध्यात्मिक उत्कर्ष का आधार भी है, जो मनुष्य को शाश्वत शान्ति और आनन्द की अनुभूति की ओर अग्रसर करता है।

मुख्य बीज शब्द- वेदान्त, जीव, ब्रह्म, अद्वैत, अविद्या, माया, आत्मज्ञान, मोक्ष, महावाक्य, पञ्चकोश, अवस्था-त्रय, अध्यारोप-अपवाद, चैतन्य, आत्मा ।

भारतीय दर्शन की समृद्ध परम्परा में वेदान्त दर्शन का स्थान अत्यन्त उच्च एवं महत्वपूर्ण है। वेदान्त दर्शन भारतीय दार्शनिक परम्परा का चरमोत्कर्ष है, जिसमें ब्रह्म, जीव तथा जगत् के वास्तविक स्वरूप का गूढ़ विवेचन प्रस्तुत किया गया है। “वेदान्त” शब्द का अभिप्राय वेदों के अंतिम भाग अर्थात् उपनिषदों से है, जहाँ परम तत्त्व का निरूपण किया गया है। वेदान्त का मूल प्रतिपाद्य विषय ब्रह्म है, जिसे जगत् का कारण, आधार तथा परम सत्य माना गया है। इसी के साथ जीव के स्वरूप तथा उसके ब्रह्म से सम्बन्ध का भी सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है। यह दर्शन न केवल दार्शनिक चिंतन की पराकाष्ठा को व्यक्त करता है, अपितु मानव जीवन के परम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति के मार्ग को भी प्रशस्त करता है। वेदान्त का मूल आधार उपनिषद्, गीता तथा ब्रह्मसूत्र जैसे प्रामाणिक ग्रन्थ हैं, इन ग्रन्थों में प्रतिपादित प्रमुख सिद्धान्त यह उद्घोष करते है कि जीव और ब्रह्म वस्तुतः अभिन्न हैं।

सामान्यतः जीव को सीमित, कर्ता-भोक्ता तथा बन्धनयुक्त माना जाता है, जबकि ब्रह्म को सर्वव्यापक, सर्वज्ञ एवं अनन्त कहा गया है। प्रथम दृष्टया इन दोनों के स्वरूप में स्पष्ट भेद प्रतीत होता है, किन्तु वेदान्त दर्शन इस भेद को अविद्या (अज्ञान) का परिणाम मानता है। विशेषतः आदि शंकराचार्य के अनुसार यह भेद केवल व्यावहारिक स्तर पर है, न कि परमार्थिक स्तर पर।

जीव अपने वास्तविक स्वरूप में ब्रह्म ही है, किन्तु माया या अविद्या के कारण वह स्वयं को सीमित शरीर-मन से युक्त मान बैठता है। जब ज्ञान की प्राप्ति होती है, तब यह मिथ्या भेद समाप्त हो जाता है और आत्मा का ब्रह्मरूप स्वरूप प्रकट हो जाता है। जीव-ब्रह्म ऐक्य की अनुभूति से मनुष्य के जीवन में स्थायी शान्ति, आनन्द और मोक्ष की प्राप्ति सम्भव होती है। यही कारण है कि वेदान्त दर्शन को आत्मज्ञान का शास्त्र कहा जाता है।

उपनिषदों में अनेक स्थलों पर इस ऐक्य का प्रतिपादन महावाक्यों के माध्यम से किया गया है। जैसे—

तत्त्वमसि[1]

अहं ब्रह्मास्मि[2]

अयमात्मा ब्रह्म[3]

प्रज्ञानं ब्रह्म[4]

इन महावाक्यों का तात्पर्य यह है कि जीव का वास्तविक स्वरूप ब्रह्म ही है। यहाँ "तत्त्वमसि" में 'तत्' शब्द ब्रह्म का तथा 'त्वम्' शब्द जीव का बोधक है, और 'असि' पद उनके ऐक्य को सूचित करता है। इस सिद्धान्त का दार्शनिक आधार अद्वैत वेदान्त में सर्वाधिक स्पष्ट रूप से मिलता है, जिसके प्रवर्तक आदि शंकराचार्य हैं। उनके अनुसार ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है—

ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या।[5]

ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य सब कुछ मिथ्या (अस्थायी) है और जीव भी वास्तव में ब्रह्म ही है, उससे भिन्न नहीं।

शंकराचार्य के अनुसार जीव और ब्रह्म में जो भेद अनुभव होता है, वह अविद्या या माया के कारण है। माया ब्रह्म की अनिर्वचनीय शक्ति है, जो सत्य को आच्छादित कर असत्य का आभास कराती है। जैसे अन्धकार में रस्सी को सर्प समझ लिया जाता है, उसी प्रकार अविद्या के कारण जीव अपने वास्तविक ब्रह्मस्वरूप को भूलकर स्वयं को देह, मन, बुद्धि आदि से युक्त सीमित सत्ता मान लेता है। इस प्रकार जीव का बन्धन वास्तविक नहीं, अपितु अविद्या जनित है।

जीवत्वं च मृषा ज्ञेयं रज्जौ सर्पग्रहो यथा[6]

ब्रह्मसूत्र में भी इस विषय का तार्किक प्रतिपादन किया गया है। **अथातो ब्रह्मजिज्ञासा**[7] से प्रारम्भ होकर यह ग्रन्थ ब्रह्म के स्वरूप तथा जीव-ब्रह्म सम्बन्ध का विश्लेषण करता है। **जन्माद्यस्य यतः**[8] सूत्र में ब्रह्म को जगत् का कारण बताया गया है। शंकराचार्य ने अपने भाष्य में स्पष्ट किया है कि यह ब्रह्म ही जीव के रूप में भी विद्यमान है एवं वेद भी इसका उद्घोष करते हैं-

सर्वं खल्विदं ब्रह्म[9]

इसी प्रकार भगवद्गीता में भी जीव-ब्रह्म ऐक्य का सिद्धान्त प्रतिपादित है। में श्रीकृष्ण कहते हैं

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः[10]

अर्थात् मैं ही सभी प्राणियों के हृदय में स्थित आत्मा हूँ। यहाँ परमात्मा और जीवात्मा की एकता का स्पष्ट संकेत मिलता है। आत्मा की नित्य, अविनाशी तथा सर्वव्यापक सत्ता का वर्णन करते हुए यह सिद्ध किया गया है कि आत्मा (जीव) का स्वरूप ब्रह्म से भिन्न नहीं है।

वेदान्त में जीव के स्वरूप का विश्लेषण करते हुए उसे चैतन्यस्वरूप, ज्ञानस्वरूप तथा नित्य बताया गया है। जीव न तो वास्तव में कर्ता है और न भोक्ता, किन्तु अविद्या के कारण वह स्वयं को कर्ता-भोक्ता मानता है। यह कर्तृत्व और भोक्तृत्व उपाधि मात्र हैं[11], जो शरीर और मन के साथ सम्बन्ध स्थापित होने से उत्पन्न होते हैं। जब यह उपाधियाँ दूर हो जाती हैं, तब जीव का शुद्ध ब्रह्मस्वरूप प्रकट होता है।[12]

ब्रह्म का स्वरूप सत्-चित्-आनन्द (सच्चिदानन्द) कहा गया है।[13] वह निराकार, निर्गुण, नित्य तथा सर्वव्यापक है। उपनिषद् कहते हैं—**सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म।**[14] यह ब्रह्म ही समस्त जगत् का आधार है और उसी से सब कुछ उत्पन्न होकर उसी में लीन हो जाता है। जब जीव अपने वास्तविक स्वरूप को पहचानता है, तब उसे ज्ञात होता है कि वह स्वयं भी वही ब्रह्म है।

जीव-ब्रह्म ऐक्य के बोध हेतु वेदान्त में अनेक दृष्टान्त दिए गए हैं। घटाकाश-मठाकाश का दृष्टान्त अत्यन्त प्रसिद्ध है। जिस प्रकार घट (घड़ा) के भीतर का आकाश और बाहर का आकाश वास्तव में एक ही है, किन्तु घट के कारण वह अलग प्रतीत होता है, उसी प्रकार जीव और ब्रह्म में भी कोई वास्तविक भेद नहीं है।[15]

शब्द प्रमाण अर्थात् शास्त्र भी इस सिद्धान्त का समर्थन करते हैं। उपनिषद् में कहा गया है—

नेह नानास्ति किञ्चन[16]

अर्थात् यहाँ (इस ब्रह्म में) कोई द्वैत नहीं है। इसी प्रकार गीता में कहा गया है—

न जायते म्रियते वा कदाचित्[17]

यह आत्मा न जन्म लेती है और न मरती है, जो यह सिद्ध करता है कि आत्मा (जीव) का स्वरूप नित्य है और वह ब्रह्म के समान ही अविनाशी है।

वेदान्त में "अध्यारोप[18]-अपवाद"[19] की विधि के अनुसार पहले जगत् और जीव की भिन्नता को स्वीकार किया जाता है (अध्यारोप) और फिर ज्ञान के माध्यम से उस भिन्नता का निराकरण किया जाता है

(अपवाद)। यह प्रक्रिया साधक को धीरे-धीरे अद्वैत की अनुभूति तक पहुँचाती है।

जीव-ब्रह्म ऐक्य के विवेचन में “पञ्चकोश” सिद्धान्त का भी विशेष महत्व है। इस सिद्धान्त के अनुसार जीव पाँच कोशों (अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय)[20] से आच्छादित होता है। ये सभी कोश वास्तविक आत्मा नहीं हैं, बल्कि उसके ऊपर स्थित आवरण हैं। जब साधक इन आवरणों का अतिक्रमण करता है, तब वह अपने शुद्ध आत्मस्वरूप को प्राप्त करता है, जो ब्रह्म के समान है।

इसी प्रकार “अवस्था-त्रय”[21] (जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति) का विश्लेषण भी जीव-ब्रह्म ऐक्य को सिद्ध करने में सहायक होता है। जाग्रत् अवस्था में जीव बाह्य जगत् का अनुभव करता है, स्वप्न अवस्था में आन्तरिक जगत् का और सुषुप्ति में वह सभी भेदों से रहित शान्ति का अनुभव करता है। सुषुप्ति अवस्था में द्वैत का पूर्ण अभाव होता है, जो इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि जीव का वास्तविक स्वरूप अद्वैत है।

वेदान्त में “प्रतिबिम्बवाद” और “अवच्छेदवाद” जैसे सिद्धान्तों के माध्यम से भी जीव-ब्रह्म सम्बन्ध को स्पष्ट किया गया है। प्रतिबिम्बवाद के अनुसार जीव ब्रह्म का प्रतिबिम्ब है, जैसे दर्पण में सूर्य का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। सूर्य और उसका प्रतिबिम्ब भिन्न प्रतीत होते हैं, किन्तु वास्तव में वे एक ही हैं। इसी प्रकार अवच्छेदवाद के अनुसार जीव ब्रह्म का ही सीमित रूप है, जैसे घट के कारण आकाश सीमित प्रतीत होता है।

यह आत्मा न जन्म लेती है और न मरती है, जो यह सिद्ध करता है कि आत्मा (जीव) का स्वरूप नित्य है और वह ब्रह्म के समान ही अविनाशी है।

वेदान्त में “अध्यारोप -अपवाद” की विधि के अनुसार पहले जगत् और जीव की भिन्नता को स्वीकार किया जाता है (अध्यारोप) और फिर ज्ञान के माध्यम से उस भिन्नता का निराकरण किया जाता है (अपवाद)। यह प्रक्रिया साधक को धीरे-धीरे अद्वैत की अनुभूति तक पहुँचाती है।

जीव-ब्रह्म ऐक्य के विवेचन में “पञ्चकोश” सिद्धान्त का भी विशेष महत्व है। इस सिद्धान्त के अनुसार जीव पाँच कोशों (अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय) से आच्छादित होता है। ये सभी कोश वास्तविक आत्मा नहीं हैं, बल्कि उसके ऊपर स्थित आवरण हैं। जब साधक इन आवरणों का अतिक्रमण करता है, तब वह अपने शुद्ध आत्मस्वरूप को प्राप्त करता है, जो ब्रह्म के समान है।

इसी प्रकार “अवस्था-त्रय” (जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति) का विश्लेषण भी जीव-ब्रह्म ऐक्य को सिद्ध करने में सहायक होता है। जाग्रत् अवस्था में जीव बाह्य जगत् का अनुभव करता है, स्वप्न अवस्था में आन्तरिक जगत् का और सुषुप्ति में वह सभी भेदों से रहित शान्ति का अनुभव करता है। सुषुप्ति अवस्था में द्वैत का पूर्ण अभाव होता है, जो इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि जीव का वास्तविक स्वरूप अद्वैत है।

वेदान्त में “प्रतिबिम्बवाद” और “अवच्छेदवाद” जैसे सिद्धान्तों के माध्यम से भी जीव-ब्रह्म सम्बन्ध को स्पष्ट किया गया है। प्रतिबिम्बवाद के अनुसार जीव ब्रह्म का प्रतिबिम्ब है, जैसे दर्पण में सूर्य का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। सूर्य और उसका प्रतिबिम्ब भिन्न प्रतीत होते हैं, किन्तु वास्तव में वे एक ही हैं। इसी प्रकार अवच्छेदवाद के अनुसार जीव ब्रह्म का ही सीमित रूप है, जैसे घट के कारण आकाश सीमित प्रतीत होता है।

जीव-ब्रह्म ऐक्य की प्राप्ति के लिए वेदान्त में साधना का भी विशेष महत्व है। इस संदर्भ में “साधनचतुष्टय”[22] को अनिवार्य माना गया है। जब साधक इन गुणों से युक्त होकर श्रवण, मनन और निदिध्यासन करता है, तब उसे ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होती है।

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।[23]

अर्थात् योगी सभी प्राणियों में आत्मा को और आत्मा में सभी प्राणियों को देखता है। यह स्पष्ट रूप से जीव-ब्रह्म ऐक्य की अनुभूति का वर्णन है।

दार्शनिक दृष्टि से जीव-ब्रह्म ऐक्य का सिद्धान्त अनेक विरोधाभासों का समाधान करता है। यह प्रश्न कि “यदि ब्रह्म सर्वव्यापक है, तो जीव उससे भिन्न कैसे हो सकता है?”—इसका उत्तर अद्वैत वेदान्त में मिलता है कि भिन्नता केवल प्रतीतिमात्र है। इसी प्रकार यह सिद्धान्त यह भी स्पष्ट करता है कि मोक्ष कोई नई वस्तु की प्राप्ति नहीं, बल्कि अपने वास्तविक स्वरूप की पहचान है।

वेदान्त दर्शन में जीव-ब्रह्म ऐक्य का सिद्धान्त अत्यन्त केन्द्रीय एवं मूलभूत तत्त्व के रूप में प्रतिष्ठित है। जीव और ब्रह्म के मध्य जो भेद सामान्यतः अनुभव किया जाता है, वह वास्तविक न होकर अविद्या अथवा अज्ञान का परिणाम है, जो ज्ञान के उदय होने पर स्वतः नष्ट हो जाता है। जीव-ब्रह्म ऐक्य सिद्धान्त न केवल दार्शनिक दृष्टि अपितु आध्यात्मिक अनुभूति भी प्रदान करता है यद्यपि रामानुजाचार्य तथा मध्वाचार्य जैसे आचार्यों ने इस विषय पर भिन्न मत प्रस्तुत किए हैं, तथापि अद्वैत वेदान्त का ऐक्य सिद्धान्त सर्वाधिक व्यापक एवं दार्शनिक दृष्टि से सुसंगत प्रतीत होता है। जब मनुष्य अपने वास्तविक स्वरूप को पहचान लेता है, तब वह जन्म-मरण के चक्र से मुक्त होकर परम शान्ति और आनन्द की प्राप्ति करता है।

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में भी यह सिद्धान्त अत्यन्त प्रासंगिक है। आज के भौतिकवादी युग में मनुष्य अपने वास्तविक स्वरूप को भूलकर बाह्य वस्तुओं में सुख की खोज करता है, जिसके कारण उसे असन्तोष और

दुःख का अनुभव होता है। वेदान्त का जीव-ब्रह्म ऐक्य सिद्धान्त यह सिखाता है कि वास्तविक आनन्द बाह्य वस्तुओं में नहीं, बल्कि आत्मा में निहित है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. सामवेद, चौखम्बा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, उत्तर प्रदेश
2. ईशादि नौ उपनिषद्, गीता प्रेस गोरखपुर, चालीसवाँ मुद्रण, संवत्-2077
3. गीता, स्वामी रामसुख दास, सचित्र साधक-संजीवनी टीका (परिशिष्टसहित) हिन्दी टीका, गीता प्रेस गोरखपुर
4. पञ्चदशी, मूललेखक-परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीविद्यारण्यमुनि, भाषान्तरकार तथा व्याख्याकार पं० रामावतार विद्याभास्कर, प्रकाशक-पं० कृष्णकुमार शर्मा पो० रतनगढ़ नि० बिजनौर (यू० पी०), मुद्रक-श्री देवेन्द्र विशारद, हिन्दी प्रेस, लाहौर
5. नैष्कर्म्यसिद्धि, श्रीमत्सुरेश्वराचार्यवर्यविरचिता, भाषानुवाद- पं० प्रेमवल्लभ त्रिपाठी, अच्युतग्रन्थमाला-कार्यालयः, काशी, संवत्-2007
6. वेदान्तसार,सदानन्दयोगीन्द्रकृत, व्याख्याकार-डॉ. कृष्णकान्त-त्रिपाठी, साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ-250002 (उ.प्रे.), 2016
7. चतु:सूत्री अध्यास भाष्य,
8. ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य, श्रीमद् आदिगुरु शंकराचार्य विरचित, व्याख्याकार-स्वामी सत्यानन्द स्वामी, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली - 110002
9. विवेकचूडामणि, श्रीमद् आदिगुरु शंकराचार्य विरचित, अनुवादक:-मुनिलाल, गीता प्रेस गोरखपुर
10. प्रकरणपञ्चकम् (आत्मबोध, प्रौढानुभुति, लाघुवाक्यवृत्ति, तत्त्वोपदेशम अपरोक्षानुभूति), श्रीमदाद्यशंकराचार्यविरचित, भाषानुवाद-श्रीकृष्णपन्तशास्त्री, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, प्रथम संस्करण-2007

पाद टिप्पणी:

[1]छान्दोग्य उपनिषद्- 6.8.7

[2]बृहदारण्यक उपनिषद्-1.4.10

[3]माण्डूक्य उपनिषद्-1. 2

[4]ऐतरेय उपनिषद्-1.2

[5]विवेकचूडामणि-20

[6]अपरोक्षानुभूति-43

[7]ब्रह्मसूत्र-1.1.1

[8]ब्रह्मसूत्र-1.1.2

[9]सामवेद-3.14.1

[10] गीता -10.20

[11] नैष्कर्म्यसिद्धि-3.18

[12] नैष्कर्म्यसिद्धि-3.28

[13] अपरोक्षानुभूति-24

[14] तैत्तिरीय उपनिषद्-2.1.1

[15] आत्मबोध-10

[16] बृहदारण्यक उपनिषद्-4.4.19

[17] गीता-2.20

[18] चतु:सूत्री, अध्यासभाष्य- 6-9

[19] वेदान्तसार-137

[20] पञ्चदशी- तत्वविवेकप्रकरण-33

[21] लाघुवाक्यवृत्ति- 4

[22] वेदान्तसार-पृष्ठ सं-44-60

[23] गीता (6.29)